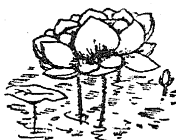
न्याय का आसन



दूध-पानी का हो अलगाव, विवेकी कर ले सच्ची जाँच ;
'न्याय का आसन' है वह धन्य, साँच को जहाँ न लगती आँच।



रचनाकार—

डॉ. रघुनाथ सिंह, एम. ए., पी-एच. डी.

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

हि० मु० एंग्लो बङ्गाली कालेज

वा रा ण सी

प्रथम संस्करण १९६० मूल्य १ रु० २५ न० पै०

प्रकाशक :–

सरोज-प्रकाशन

बी. ५/३१५, अवधगैबी

वाराणसी

मुद्रक–



आत्म-निवेदन

आज देश के नवनिर्माण के बहुमुखी प्रयत्न में बालकों के स्वस्थ जीवन-विकास के लिए उपयोगी बाल-साहित्य के निर्माण की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा है; इसलिए बालकों के मनोरंजन के साथ ही उनके बुद्धि-विकास और चरित्र-निर्माण के उद्देश्य से 'न्याय का आसन' पुस्तक की रचना हुई है। मनुष्य जाति की सभ्यता के विकास में न्याय-व्यवस्था का सदैव महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सर्व-सुलभ अच्छी न्याय-व्यवस्था समाज की सुख-शांति का मूल आधार है और इसलिए किसी भी राष्ट्र के सुदृढ़ शासन की कसौटी यह न्याय-व्यवस्था ही बन सकती है। अतः प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा मैंने बालकों के मनोरंजन के साथ न्याय के प्रति उनकी अभिरुचि जगाने का प्रयत्न किया है। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए देश-विदेश की न्याय-सम्बन्धी उन सभी बहुप्रचलित कहानियों को सरल, सुबोध भाषा में पद्यबद्ध किया गया है, जिनमें न्याय-कर्त्ता—राजाओं, राजमंत्रियों, न्यायाधीशों और पंचों की बुद्धि-क्षमता, सताए हुए के प्रति सहानुभूति, सदाचारी के प्रति ममता, भूल-चूक करने वाले के प्रति कभी-कभी अपेक्षित क्षमाशीलता अथवा निष्पक्षता का बड़ा ही प्रेरणादायक रूप देख पड़ता है। उद्देश्य की पूर्णता के लोभ से श्री प्रेमचंद जी की प्रसिद्ध कहानी 'पंच परमेश्वर' को भी कटे-छँटे रूप में

पद्यबद्ध करके सम्मिलित कर लिया गया है। इन कहानियों का जुटाव करने में मुझे काफी परिश्रम करना पड़ा।

न्याय के आसन पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों में तीव्र बुद्धि, व्यापक सहानुभूति, कल्याणकारी क्षमाशीलता और सामान्य निष्पक्षता होनी चाहिए। इन चार प्रमुख गुणों के आधार पर कहानियों के चार वर्गीकरण किये गये हैं। और प्रत्येक वर्ग के आरम्भ में उस गुण विशेष के सम्बन्ध में एक सूत्र-कथन पद्यात्मक रूप में रखा गया है और एक सूत्र-कथन न्याय की अभ्यर्थना में पुस्तक के द्वितीय आवरण-पृष्ठ पर दिया गया है।

कहानियों को पद्य का रूप इसलिए दिया गया कि गेय पद्यों में इनको पढ़ने से बालकों को अधिक आनन्द मिले। पद्य की भाषा में स्वभावतः जो कुछ-न-कुछ व्यञ्जकता और भावात्मकता आ जाती है, उसके कारण कहानियों का कथानक कुछ अधिक रसात्मक हो सका है। कहानियों के मूल ढाँचे के भीतर भाव और कल्पना का स्वतंत्रता-पूर्वक उपयोग करके और इस प्रकार अधिक से अधिक रोचक बनाकर न्याय की भव्य झाँकी देना मुझे अभीष्ट रहा है, जिससे 'न्याय' कोमल मन के किशोरों की चेतना और स्वभाव का अंग बन सके।

पुस्तक की भाषा को सरल और प्रवाहमय बनाने की मेरी प्रयत्न-पूर्ण चेष्टा रही। वस्तुतः सरल सुबोध भाषा का लिखना कठिन काम होता है। सरल भाषा के प्रयोग में यदि मुझे विज्ञ पाठकों की दृष्टि में सफलता मिल सकी है तो यह मेरे लिए विशेष संतोष की बात है।

प्रस्तुत पुस्तक बालकों के अतिरिक्त वय-प्राप्त विज्ञ जनों के मन का भी रंजन करेगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

—रघुनाथ सिंह

समर्पण...

चिंतामणि मुखर्जी एंग्लो बङ्गाली कालेज, वाराणसी के

प्रधानाचार्य

श्री सरोजेश चन्द्र भट्टाचार्य जी

को

जो अपनी विद्वत्ता, कार्य-क्षमता और मौलिक सूझ-बूझ के कारण

शिक्षा-क्षेत्र में अपना विशेष प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं,

जो छात्रों के जीवन-निर्माण में सतत सचेष्ट रहते हैं, जिनका कभी

विद्यार्थी और अब सहयोगी हो सकने के प्राप्त सुअवसर

को मैं अपने प्रति उनके सहज स्नेह और ममता के

कारण अपने जीवन का सौभाग्य मानता हूँ,

न्याय का आसन

परम श्रद्धा - भाव से

स म र्पि त

है ।

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ संख्या
१–देश के बच्चों से	...	१
२–असली माता	...	४
३–'चोर की दाढ़ी तिनका'	...	१२
४–पेड़ की गवाही	...	१४
५–नाव के माल का अधिकारी	...	१६
६–ऋण के बदले छड़ी	...	३१
७–घोड़ों की बाँट	...	३५
८–स्त्री की धूर्तता	...	४०
९–दोस्त गधा भी हो सकता है !	...	४३
१०–'मियाँ की जूती मियाँ के सिर'	...	५४
११–जो पसन्द होगा	...	५६
१२–दण्ड ही नहीं, क्षमा भी	...	६४
१३–पञ्च-परमेश्वर	...	७४
१४–हमारी कामना	...	८०



देश के बच्चों से



बच्चो, तुम भारत माता के
स्वप्न सुनहले हो, दुलार हो,
हो आशा, उल्लास, कामना,
उस के भावी कर्णधार हो।

आगे चलकर तुम्हें देश का
खूब सुदृढ़ शासन करना है,
और न्याय का अंकुश रखकर
उसका संचालन करना है।

जनता की सुख-शान्ति-व्यवस्था
निर्भर होती इसी न्याय पर,
अगर न्याय में प्रखर तेज हो,
सिंह न झपटे कभी गाय पर।

अच्छा न्याय देश की उन्नति
और प्रगति का परम मूल है,
तथा सहानुभूति से पूरित,
बुद्धि न्याय का रुचिर फूल है।

तुम कुछ बच्चों से ही होगा
न्याय सुशोभित आगे चलकर,
उसके योग्य बुद्धि विकसित हो,
संयम, सत्य, शील में ढलकर।

अतः सदाचार से रहकर
विद्या पढ़कर बुद्धि बढ़ाओ,
भली भाँति कर्त्तव्य निभाकर,
जीवन अपना यशी बनाओ।

मेरी शुभ कामना यही है—
तुम कर सको धर्म का पालन,
लेकर यह विश्वास कर रहा,
तुमको भेंट 'न्याय का आसन'।

'जैसे को तैसा' की यह
लोकोक्ति हुई चरितार्थ जहाँ है,
पद्य-बद्ध प्रत्येक न्याय की
अमर कहानी हुई यहाँ है।

—*—

स्वयं न्याय-पति बात बोलकर,
न्यायार्थी की बात तोलकर।
भीतर जाकर हृदय देखता,
मन का कपट-कपाट खोलकर।

असली माता



दो नारियाँ साथ रहती थीं
बहुत दिनों से किसी नगर में,
उनके पति परदेश गये थे,
और न कोई था उस घर में।
उनके नन्हें बच्चों का था
रूप-रंग कुछ एक मेल का।
तीन महीने सुख से बीते,
पता किसे है भाग्य-खेल का?

एक रात में एक नारि के
बच्चे को डँस लिया साँप ने,
उस अभागिनी के बिचार को
दूषित जो कर दिया पाप ने,
गई मरा शिशु लिए, जहाँ थी
सोई पड़ी दूसरी नारी,
बदल लिया उसके बच्चे को
जान न पाई वह बेचारी।

किया कलेजा मोटा उसने,
बेटे का यह शोक सह गई !
जागी प्रात:काल दूसरी
देखा जो कुछ, दंग रह गई ।
समझ नहीं कुछ भी पाई वह,
आँखों में छा गया अँधेरा,
हाय कर उठी–"पापिनि ने क्या
बदल लिया है बच्चा मेरा ?"

झटपट वह उसके कमरे में
जा पहुँची पागल सी होकर,
उसकी गोद देख बेटे को
बोली वह घबराकर रोकर—
"भला बताओ, कैसे तुमने
अपना हृदय किया पत्थर का ?
ऐसा दण्ड-भोग पाकर भी
लगा नहीं डर क्या ईश्वर का ?"

शोक और संकोच मिटाकर
वह तो लगी खूब गुर्राने—
"अपना बेटा खाकरके अब
आई हो तुम मुझे सिखाने ?"
फिर तो कहा-सुनी दोनों में
होने लगी, जुटे नर-नारी,
तीन मास के बच्चों की
करना पहिचान समस्या भारी।

जीवित बच्चे की माता अब
छाती पीट लगी जो रोने,
राज-सभा में उनको भेजा
तब पड़ोस के भले जनों ने।
महाराज थे बड़े प्रतापी,
न्याय निराला वे करते थे,
अनुचित कोई कार्य इसलिए
लोग न करते थे, डरते थे।

पहुँचीं दोनों, लगा हुआ था
राजा का दरबार उस समय,
जीवित शिशु की माता रोकर
बोली—"महाराज करुणामय,
सदा आप कल्याण, न जाने,
कितनों का करते रहते हैं,
आरत-दु:खी जनों की चिन्ता—
कष्ट सभी हरते रहते हैं।

मैं दुखिया भी शरण आ गई
अपने आँचल की पुकार ले,
न्याय आपका आज दयानिधि,
मुझे डूबते से उबार ले!"
इतना कहकर हो हताश सी
गिरि भूमि पर हाय मारके,
कहा दूसरी ने रोकर—"यह
मुझे ओढ़ाती गाय मारके।

इसका बच्चा मरा रात में,
जीवित मेरा लिया चाहती,
पत्थर की छाती करके यह,
मुझे निपूती किया चाहती।
मैं जीवित बच नहीं सकूँगी,
छीना गया लाल जो मेरा,
दया-निधान, पुत्र में अपने
करता मेरा प्राण बसेरा।"

महाराज ने पूरा ब्योरा
सुना साथ के भले जनों से,
बोले—"इस भारी उलझन में
निर्णय होगा राम - भरोसे।"
राजा की आज्ञा से बच्चा
उनके आगे गया सुलाया,
लेकरके तलवार हाथ में
राजा ने फैसला सुनाया—

"मैं इसके दो टुकड़े करके
बाँट रहा हूँ दोनों ही को !"
चीख उठी माता सुनते ही
पहुँचा ऐसा सदमा जी को।
"नहीं, नहीं ! ऐसा न कीजिए,
मुझको पाप लगेगा भारी,
बच्चा इसका ही है राजन्,
मर जावेगी यह बेचारी !

मुझे मृत्यु का दण्ड दीजिए
मैंने भारी पाप किया था।"
सुनते ही उठकर राजा ने
बच्चे को तब उठा लिया था।
उस दुःख से कातर माता से
कहा न्याय-पालक राजा ने—
"असली भेद मुझे माता का
लेना था बस इसी बहाने।

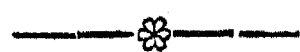
इसको बचा लिया मरने से
जिसने, उसका ही बच्चा है,
न्याय-कसौटी पर माता का
प्रेम-भाव निकला सच्चा है !
तेरे आँचल की पुकार थी,
लो अपना हीरा आँचल का !"
माता का आनन्द आँख में
मोती का पानी बन छलका।

मूर्त्ति काठ की बनी दूसरी
नारी से तब राजा बोले—
"भोले कथन तुम्हारे निकले
मातृ-हृदय के आगे पोले !
पुत्र-शोक को पचा गई तुम,
मुझको होता अचरज भारी।
अब तुम क्यों रोती हो ? जाओ,
क्षमा की गई भूल तुम्हारी।

महाराज की न्याय-बुद्धि को,
　　क्षमा-वृत्ति को देख सभासद,
'धन्य, धन्य!' कह उठे, न्यायका
　　कितना महिमामय होता पद।
　　　　स्वयं न्यायपति बात बोलकर,
　　　　　　न्यायार्थी की बात तोलकर
　　　　भीतर जाकर हृदय देखता,
　　　　　　मन का कपट-कपाट खोलकर



'चोर की दाढ़ी तिनका'



किसी नगर में एक बड़ा सौदागर रहता,
रूई का व्यापार बड़ा वह केवल करता।
उसकी बढ़ती देख सभी उससे जलते थे,
और लगाए ताक सदा उस पर रहते थे।

सबने मिलकर रूई की चोरी करवाई,
दु:खी सेठ ने राजा से की न्याय-दुहाई।
राजा बोले—"कहो तुम्हारा शक किस पर है?"
उसने उत्तर दिया—"बड़ा यह तो दुस्तर है!

किसे कहूँ? सारा पड़ोस मेरा डाही है,
एक राय हो मेरी अवनति का चाही है।"
राजा न्यायी रहा, परिश्रम बड़ा लगाया,
बहुत खोज की, किन्तु चोर का पता न पाया।

बहुत हुआ हैरान, उपाय लगाई उसने,
सबको दावत देने की ठहराई उसने।
नगर-निवासी सभी पधारे दावत खाने,
राजा उनके बीच गया तब किसी बहाने।

सोचा उसने—"बुद्धि-जाल मैं यहाँ बिछाऊँ,
पकड़ चोर को जन-समूह से बाहर लाऊँ"—
"अहा! चोर तो पकड़ लिया मैंने उस दिन का।
लगा चोर की दाढ़ी में रूई का तिनका!"

अन्य लोग तो महाराज को लगे निरखने,
चोर बेचारा लगा हाथ दाढ़ी पर रखने।
राजा ने झट उसे वहीं पर पकड़ लिया था,
उसके घर को तुरत तलाशी भेज दिया था।

सभी माल हो गया बरामद उसके घर में,
महाराज की खूब बड़ाई हुई नगर में।
अमर सदा के लिए न्याय कैसा उस दिन का,
वही कहावत बनी—'चोर की दाढ़ी तिनका!'

++ ++ ++ ++

पेड़ की गवाही

—*—

ा एक साहूकार, जो मन का बड़ा छोटा रहा,
ान का बड़ा था लालची, विश्वास का खोटा रहा।
ःहता उसी के गाँव में ही एक साधु किसान था,
ान-धान्य से वह पूर्ण था, अच्छे गुणों की खान था।

वह धूर्त सुजन किसान का था मित्र बनना चाहता,
विश्वास में लेकर उसे भरपूर छलना चाहता।
रहने लगा वह साथ उसके, मित्र पूरा बन गया,
उस कृषक का मन प्रेम में भरपूर फिर तो सन गया।

ःस मित्रता के लाभ का अच्छा सुअवसर आ गया,
ाह घात करने के लिए बस ठीक मौका पा गया।
ाब एक दिन खलिहान में बेचा अनाज किसान ने,
ा।या तुरत वह चतुर अवसर देख रुपए माँगने।

उस समय सन्ध्या हो गई थी, कुछ अँधेरा हो चला,
उस स्थान का वट-वृक्ष चिड़ियों का बसेरा हो चला।
सुनसान था, वह कृषक ही बैठा अकेला था वहाँ,
बोला—"किसी के पास, रहते आपके, जाऊँ कहाँ?

मुझको अचानक द्रव्य की भारी जरूरत आ पड़ी,
करके कृपा रुपए हजार अवश्य देवें इस घड़ी।"
रुपए हजार किसान ने उसको तुरत ही दे दिए,
विश्वास में कोई गवाहीं भी न ली उसके लिए।

रहने लगा बदला हुआ वह कृषक से व्यवहार में,
तब देख उसकी गति, पड़ा वह कृषक सोच-विचार में—
उसके अचानक इस नए बर्ताव का क्या अर्थ है?
रुपए पचाना चाहता, समझा मुझे असमर्थ है!

कुछ समय बाद किसान उसके घर गया धन माँगने,
आया न कुछ संकोच टालमटोल कर दी घाघ ने—
"इस समय घर में पेट-पर्दा का ठिकाना है नहीं,
लज्जित कभी मत कीजिएगा, बात कहता हूँ सही।

रुपए कभी जो हुए, देने के लिए तैयार हूँ,
कब दे सकूँगा, कह नहीं सकता, बहुत लाचार हूँ।"
ठनका कृषक का माथ, खिसकी भूमि उसके पाँव की-
रुपए सभी डूबे, नहीं साखी-गवाही गाँव की

मैंने बड़ी की भूल, इसकी बात में जो आ गया,
विश्वास में मुझको फँसा रुपए सभी यह खा गया।
होकर निराश किसान बोला—"बात यह अच्छी नहीं,
विश्वास में कोई न ऐसा काम करता है कहीं।

कुछ ठीक से बोलो, नहीं यद्यपि हुई तो भूल है,
दरबार में जाना पड़ेगा, भाग्य ही अब मूल है।"
"जैसा रुचे अब आपको, करिए, अधिक मैं क्या कहूँ ?
धमकी मुझे हैं दे रहे, कमजोर भी ऐसा न हूँ।"

भगवान का ले नाम, अपने हृदय को करके कड़ा,
आखिर उसे दरबार में राजा-निकट जाना पड़ा।
देकर दुहाई कह सुनाई आप-बीती बात सब,
आज्ञा हुई लाया गया दरबार में वह धूर्त तब।

पूछा नृपति ने कृषक से—"रुपए दिए तुमने कहाँ ?
देते समय कोई गवाह न था उपस्थित क्या वहाँ ?"
बोला कृषक—"हे अन्नदाता, बात थी विश्वास की,
मैंने न ली कोई गवाही, भूल थी यह दास की।

संध्या-समय वट-वृक्ष के नीचे इसे रुपए दिए,
कोई न और सबूत मेरे पास है इसके लिए।"
"होगी गवाही पेड़ की ही"—तब कहा महिपाल ने,
"जाओ बुला लाओ यहाँ तुम पेड़ को ही सामने।"

"राजन्, भला यह बात कैसी ? पेड़ तो न सजीव है!
करिए क्षमा, आज्ञा मुझे लगती विचित्र अतीव है।"
"है पेड़ में भी प्राण होता, जान लो इसको सही,
जाकर मनौती मान दो, वह तुरत आवेगा यहीं।"

दरबार भी सुन बात राजा की अचम्भित रह गया,
वह धूर्त मन में खुश हुआ कि भाग्य उसका लह गया!
होकर निराश किसान बेचारा गया दरबार से,
देरी लगी होने, कहा राजा ने तब मक्कार से—

"पहुँचा न होगा क्या अभी वह, देर कितनी कर रहा ?"
"श्रीमान्, अब तो लौट आना चाहिए।"—उसने कहा,
पहुँचा कृषक, उस पेड़ से करके मनौती थक गया,
वह पेड़ गुमसुम ही रहा, यद्यपि बहुत वह बक गया।

होकर दु:खी वह लौट आया, और राजा से कहा–
"श्रीमान्, ला न सका उसे दरबार में असफल रहा।"
राजा लगे हँसने, कहा–"वह तो गवाही कर गया,
इस धूर्त के मुँह पैठ करके वह सफाई कर गया!

जो बात होती झूठ, तो यह पेड़ को क्यों जानता?
तुमने दिए रुपए इसे—निष्कर्ष यह मैं मानता।"
वह धूर्त पकड़ा ही गया, थे दंग दरबारी सभी,
जिह्वा सभी के है चढ़ी, वह न्याय-गाथा आज भी।

++ ++ ++ ++

नाव के माल का अधिकारी

—※—

राज्य भारत पर करते रहे
प्रतापी अकबर शाहंशाह,
सुदृढ़ शासन में सबके लिए
खुली थी सुख-सुविधा की राह।
एक ब्यापारी अपना माल
नाव पर लाद, छोड़ बंगाल,
रुका आकर जब दिल्ली नगर,
नाव के मालिक ने की चाल।

माल की लालच में आ गया,
बेइमानी करने पर तुला,
हड़प सब कर जाने के लिए
नौकरों को अपने सब बुला,
सिखाया लालच देकर उन्हें—
"बताना यह सब मेरा माल,
अगर सध गई भाग्य से चाल
तुम्हें कर दूँगा खूब निहाल।"

मान ली उन सब ने यह बात,
लोभ में धन के मन आ गया।
ढीठ बन गया धूर्त मल्लाह,
सहारा उनका जो पा गया।

नाव से उसने दिया उतार
सेठ को, वह हो गया हताश,
विवश बेचारे ने जा कही
बात सब बादशाह के पास।

नाव पर फौजी पहरा पड़ा,
बुलाया गया तुरत मल्लाह,
शाह ने पूछ-ताछ की बड़ी,
न पाई उस झगड़े में राह।

सेठ ने कही विलख कर बात–
''नहीं जो न्याय हुआ श्रीमान्,
भिखारी बन जाऊँगा सही,
लगेगा मुझे न कहीं ठेकान।

शाह का दिल तो उठा पसीज,
न्याय का मिला न पर आधार।
नाव के सब नौकर प्रतिकूल
गवाही देते, मिला न पार।

शाह ने उचित न्याय का भार
बीरबल के सिर पर रख दिया।
उन्होंने बुला उन्हें एकान्त
पूछना क्रमशः जारी किया।

नाव-मालिक से पूछा प्रथम—
"खरीदा तुमने क्या-क्या माल ?"
नाम का उसे पता था नहीं,
पड़ा कठिनाई में उस काल।

बात जो कुछ थी देखी-सुनी,
दिया उत्तर उसके अनुसार,
मशालों की गिनती में किन्तु
नहीं नाविक ने पाया पार।

सेठ ने गिना दिये सब नाम,
उसे तो सब कुछ था ही ज्ञात,
बीरबल को कुछ मिला प्रकाश,
सुन चुके जब वे उनकी बात।

जान वे अपने मन में गए—
नाव का मालिक धोखेबाज,
किन्तु इतने पर ही तो नहीं
न्याय का सज सकता था साज!

तीन दिन की पेशी तब पड़ी,
बीरबल ने समाप्त की जाँच।
सोचने लगे कि ऐसा करूँ,
न्याय को जिससे लगे न आँच।

× × × ×

साथ अपने मुनीम को लिए
एक व्यापारी आया वहाँ,
नदी के तीर नौकरों-साथ
टिका नौका का मालिक जहाँ।

कहा नाविक से—"मैंने सुना
माल झगड़े में है पड़ गया।
फैसला होने तक के लिए
आपका काम सभी अड़ गया।

हमें तो लगता है—फैसला
आपके ही होगा अनुकूल,
धूर्त बनकर व्यापारी व्यर्थ
सत्य पर डाल रहा है धूल।

चला आया हूँ मैं इसलिए
सेठ जी, आज आपके पास,
माल का मोल-भाव हो जाय,
निपट जा चुका रहे यह काज।

बोलिए, क्या-क्या कितना माल,
और लागत है कितनी लगी ?
यहाँ दिल्ली तक ले आने में
मजदूरी भी जितनी लगी,

समझ कर सबका पूरा दाम,
बोलिए ठीक-ठीक जी खोल,
गिनाकर सामानों के नाम,
और बतला कर उनके तोल।"

कहा नाविक ने—"बैठा खर्च
जोड़कर अब तक चार हजार,
पाँच सौ का रख लूँगा लाभ
न कम पर होऊँगा तैयार।"

बात सुन व्यापारी ने कहा—
"ठीक तो नहीं कह रहे आप,
बात ड्योढ़े की हैं कर रहे,
कहूँ जो झूठ, लगे तो पाप।

जानते होंगे भली प्रकार—
मन्द चल रहा यहाँ बाजार,
माल का दाम अधिक से अधिक,
सेठजी, होगा तीन हजार।"

तुरत उनके मुनीम ने कहा—
"सेठजी, यह क्या करते आप?
निकासी की कुछ आशा नहीं,
माल ही जाते धरते आप!

नमूना तो पहिले लें देख,
कीजिएगा पीछे फिर भाव,
सहेंगे घाटा भारी आप,
बिना देखे न करें ठहराव।"

नाव-मालिक ने तुरत निकाल,
नमूना रखा सेठ के हाथ,
देखते ही मुनीम ने उसे,
बना मुँह, ठोंका अपना माथ—

"साथ मैं आया होता नहीं,
डूब घाटे में पड़ते आप,
तरी से नमी खा गया माल,
इसे लेकर क्या करते आप?"

सेठ ने कहा—"इसी से तुम्हें
साथ ले लेता मैं सब कहीं,
इस समय ढाई से तो अधिक,
माल का दाम लगेगा नहीं।"

कहा नाविक ने—"इतना मन्द,
माल का भाव हुआ जो आज,
आप जो दे दें तीन हजार,
न होगा तो मुझको एतराज।"

सेठ ने कहा—"पटेगा नहीं"
उठ खड़ा हुआ कहा—"अब चलें।"
नाव-मालिक ने मन में कहा—
फँसे थे ग्राहक आकर भले!

हाथ से निकल जा रहे आज,
पटा लूँ क्यों न दाम पर किसी?
पुकारा—"बेंच रहा मैं माल,
आपके कहे दाम पर इसी।"

सेठ ने कहा—"रखें विश्वास,
खरीदूँगा मैं सारा माल।
हुआ जो आपस में ठहराव,
आप रखिएगा इसका ख्याल।"

गए वे वहाँ, जहाँ था वणिक,
माल का असली जो हकदार।
अकेले बैठा खिन्न उदास,
किया उसने इनका सत्कार।

प्रथम झगड़े की चर्चा हुई,
बात फिर मतलब वाली कही।
सेठ बोला—"कर सकता बात
फैसले से पहिले मैं नहीं।

बहुत आग्रह जब होने लगा,
सेठ तब बोला किसी प्रकार—
"लाभ को लेकर सारा दाम
पड़ेगा लगभग आठ हजार।

फैसला होने पर अनुकूल,
आपको जँचे ठीक जो दाम,
आप तब दर्शन दें, अन्यथा,
कष्ट करने का है क्या काम ?"

मुनीम ने कहा—"रखें यह ध्यान,
बड़ा ही मन्द चल रहा भाव,
दाम साढ़े छः लेकर आप
करें, तो कर लेवें ठहराव।"

सेठ बोला—"घाटे पर माल,
बेंच सकता मैं अपना नहीं,
नहीं होगा ऐसा व्यापार,
इसे बेचूँगा जाकर कहीं।"

किया दोनों ने बड़ा प्रयत्न,
माल का पटा न फिर भी दाम,
किसी दिन आने की कर बात,
पधारे दोनों अपने धाम।

× × × ×

पधारे जन साधारण सभी,
तीसरे दिन सुनने फैसला,
कि देखें, मन्त्री जी का न्याय
आज करता है किसका भला !

झुकाकर बादशाह को शीश,
महाजन के प्रति गर्दन मोड़,
बीरबल हँसकर कहने लगे,
सभा की खामोशी को तोड़—

"सेठ, तुम जिद्दी लगते बड़े,
और यह नाविक बहुत उदार,
माल का दाम बेरुखे ढंग,
लगाया तुमने आठ हजार।

इधर इसने तो साढ़े चार,
और फिर तीन, उसे भी छोड़,
दाम ढाई हजार कर दिया,
शील मेरा यह सका न तोड़।

शाह के मुख से निकली 'वाह',
सभा से 'धन्य-धन्य' के बोल,
सन्न नाविक था, सेठ प्रसन्न,
जानकर मोल-भाव की पोल।

न्याय का निर्णय सबने सुना—
वणिक का ही ठहरा वह माल,
नौकरों को लालच में फँसा,
नाव-मालिक ने की थी चाल।

न्याय ने दिया सेठ को माल
और नाविक को कारावास।
झूठ अन्याय, कपट का जोर
न चलता न्याय-बुद्धि के पास।

दूध-पानी का हो अलगाव,
विवेकी कर ले सच्ची जाँच;
न्याय का आसन है वह धन्य,
साँच को जहाँ न लगती आँच।



[illegible] के बदले छड़ी

सैंकोपैंजा अमर हो गया, ऐसा उसने न्याय किया,
दया, सहानुभूति, बुद्धि से पूरा उसने काम लिया।
न्याय-बुद्धि की एक कहानी कही-सुनी जाती अब भी,
नहीं मामला टेढ़ा ऐसा सुना किसी ने रहा कभी।

एक वृद्ध ने किसी सेठ से रुपए बहुत उधार लिए,
निश्चित समय व्यतीत हो गया, तब भी वापस नहीं किए।
लिखा-पढ़ी कुछ हुई नहीं थी, बस विश्वास रहा साखी
किन्तु किया विश्वास-रत्न को लालच ने मिट्टी-राखी।

दावा किया सेठ ने देखा जब उसकी आनाकानी,
पहुँच पास सैंकोपैंजा के कह दी अपनी हैरानी।
न्यायालय में आज्ञा-द्वारा बुड्ढा गया बुलाया तब,
हुआ कुतूहल लोगों को वह छड़ी टेकता आया जब।

पूछा जज ने—"किया महाजन ने तुम पर ऋण का दावा
रुपए लेकर इधर-उधर अब काट रहे हो क्यों कावा?"
साक्षी में उन दिनों लोग विश्वास शपथ पर करते थे,
और शपथ झूठा खाने से लोग बहुत ही डरते थे।

जज के आगे छड़ी टेककर झुका हुआ था वृद्ध खड़ा,
छड़ी सेठ को देकर गरदन सीधी करके हुआ कड़ा।
बोला वह—"श्रीमान्, सेठ ने मुझे व्यर्थ बुलवाया है,
ईश्वर को साक्षी दे कहता—ऋण मैंने लौटाया है।"

खाकर शपथ वृद्ध ने वापस अपनी छड़ी पुनः ले ली।
इस प्रकार इस देन-लेन की बाजी जो उसने खेली—
जज को हुआ कुतूहल भारी—इसने यह क्या चाल चली?
भेद समझ लेने में उसकी सूझ एक नम्बर निकली!

उसने कहा—"न्याय में मेरे छड़ी महाजन पावेगा।"
कहा सेठ ने—"क्षमा कीजिए, किसे न्याय यह भावेगा?
मेरे इतने बड़े कर्ज में छड़ी मुझे जो देते हैं,
झूठा मुझे समझ करके मेरा मजाक क्या लेते हैं?"

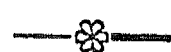
जज बोला—"यदि कर्ज-बराबर कीमत की यह छड़ी न हो,
दूँगा छोड़ न्याय की कुर्सी, सही दृष्टि जो पड़ी न हो।"
काँप उठा बुड्ढा, मुर्झाया मुख खिल उठा महाजन का,
साढ़े पाँच हजार जोड़ था उसके ब्याज-मूलधन का!

सैंकोपैंजा की आज्ञा से जब टुड़वाई गई छड़ी,
हुआ बड़ा आश्चर्य सभी को, निकली वह तो रत्न-जड़ी !
मूल-ब्याज दोनों को लेकर ऋण हो सकता था जितना,
आँका गया मूल्य रत्नों का, ठीक-ठीक आया उतना !

जज ने कहा—"शपथ सच्ची लेने को कैसी चाल चली
ऋण के इतना रत्न छड़ी में रखे, सूझ गहरी निकली
सूझ देख दोनों पहलू की लोग दंग रह गए वहाँ
जज की न्याय-बुद्धि की चर्चा हुई खूब ही जहाँ-तहाँ।

न्यायासन की होती आई,
बहुत बड़ी जिम्मेदारी;
न्यायी में न बुद्धि हो केवल,
सहानुभूति भी हो भारी।

घोड़ों की बाँट



किसी नगर में एक सेठ था,
रहे तीन उसके बेटे,
तीनो सुस्त आलसी निकले,
रह जाते बैठे-लेटे।
धन की कमी न होने पर भी,
वह चिंतित सा रहता था,
सब कुछ देख-भाल करने का,
कष्ट अकेले सहता था।

जब मरने के निकट हुआ वह,
करके खूब समझदारी
बेटे-पोतों के हिसाब से
लिख डाली हिस्सेदारी।
जेठे को आधा, मझले को
कुल का मिला तिहाई था
हिस्सा पाने में घाटे में
पड़ा तीसरा भाई था।

उसने नवाँ भाग ही पाया,
जायदाद जो शेष रही,
धर्म-कार्य में व्यय होनी थी,
पड़े जरूरत जहाँ कहीं।
मरा सेठ, तीनों ने बाँटे
जायदाद, रुपए - पैसे;
घोड़ों की संख्या सत्रह थी,
वे बाँटे जाते कैसे ?

घोड़ों का हिस्सा लगने में
झँझट खड़ा हुआ भारी,
किसी भाँति विधि बैठ न पाई,
सबकी सूझ-बूझ हारी।
कोई भी तैयार नहीं था,
हिस्से से कम लेने को,
घोड़े तीन काटने पड़ते,
ठीक बाँट कर देने को।

काजी एक रहा उस नगरी
अद्‌भुत बुद्धिमान्, न्यायी,
उसके पास गए तीनों, जब
उलझन नहीं सुलझ पायी।
उनकी उलझन सुन करके वह
कहने लगा मधुरता से–
"इसमें क्या है? मैं कल आकर
दूँगा बाँट सरलता से।"

फिर तो अगले ही दिन काजी
घोड़े पर सवार होकर,
जा पहुँचा, थे राह जोहते जहाँ
सभी मालिक - नौकर।
नगर निवासी भी कितने ही
हुए इकट्‌ठे थे आकर
आज्ञा दी उसने तीनों को–
"घोड़े खड़े करो लाकर।"

फिर उनसे बोला–"यदि तुमको
अधिक भाग से मिल जावे,
खुशी नहीं क्या तुमको होगी ?
बोलो, यदि मन को भावे।"
तीनों बोले–"भली बात क्या
हो सकती इससे बढ़कर ?
कोई आपत्ति भला इसमें
हमको हो सकती क्योंकर ?"

उसने उन सत्रह घोड़ों में,
अपना घोड़ा मिला दिया,
कुल संख्या के आधे घोड़े–
नौ जेठे को दिला दिया।
कुल का एक तिहाई–छः मझले
के हिस्से में छोड़ा,
नवा भाग–दो छोटे को दे,
बचा लिया अपना घोड़ा।

तीनों ही कुछ अधिक पा गए,
बाँट भली यह थी कैसी ?
मुग्ध हो गए दर्शक सारे,
सूझ अनोखी हो ऐसी !
न्यायासन की होती आई,
बहुत बड़ी जिम्मेदारी ;
न्यायी में न बुद्धि हो केवल,
सहानुभूति भी हो भारी ।



स्त्री की धूर्तता

—❀—

अकबर का दरबार लगा था, जमे हुए थे दरबारी,
वहाँ पहुँचकर हाय मचाकर चिल्ला उठी एक नारी।
"महाराज, यह डाकू जो यात्री का वेष बनाया है,
मेरे गहने छीन लिए, ले जाकर कहीं छिपाया है।"

बोला वह—"कैसी बातें ? मैं नगर देखने आया था,
अपने बादशाह का दर्शन मैंने कभी न पाया था।
मिली मार्ग में यह, मैंने जो कह दी इससे मन की बात,
रानी की दासी कहकर ले आई मुझे लगाकर घात।

दूर रहा छीनना, अंग पर इसके रहा नहीं गहना।"
वह बोली-"क्या खूब, तुम्हारे भोलेपन का क्या कहना !
गहने छीन लिए मेरे, अब भोला कैसा है बनता ?"
सुन दोनों की बात गौर में पड़ी वहाँ बैठी जनता।

'कैसे उलझन सुलझाऊँ'—अकबर थे दुविधा में भारी—
'यात्री लगता भोला, पर क्या चाल कर सकेगी नारी ?'
इसका भार बीरबल पर ही फिर तो अकबर ने डाला,
इस सिर-पैर बिना झगड़े को मंत्री के सिर पर टाला।

मंत्री ने नारी से पूछा—"गहनों का क्या मूल्य रहा ?"
"कीमत एक हजार लगी थी"—उस नारी ने तुरत कहा ।
देखा उसका रंग-ढंग, मंत्री ने मन में समझ लिया—
नारी ने छल-कपट बड़ा निर्दोष पथिक के साथ किया ।

फिर भी मन में सोच जेल में भेज दिया परदेशी को ।
कहा—"फैसला होवेगा कल यहाँ दूसरी पेशी को ।"
वे हजार रुपए यात्री को उस सन्ध्या को दे आए,
और उसे कह दिया, इन्हें कल अपने साथ लिए आए ।

लगा पुनः दरबार उपस्थित हुए वहाँ दोनों आकर,
मन्त्री ने गम्भीर बड़ी मुख-मुद्रा अपनी दिखलाकर ।
बादशाह को शीश झुकाया और कहा उस यात्री से—
"तुमने गहने लिए, निकलता यह विचार मेरे जी से ।

दो गहने, अथवा रुपए उतने ही तुम लाओ जाकर ।"
उसने रुपए दिए तुरत ही सभा-मध्य आज्ञा पाकर ।
रुपए पा दरबार से बाहर ज्योंही वह नारी निकली,
मंत्री बोले—"न्याय हो गया गलत, नहीं यह बात भली !"

फिर तो आज्ञा पा यात्री ने उस नारी को जा घेरा,
उससे रुपए ले लेने का यत्न लगाया बहुतेरा।
हार गया उससे, यद्यपि मन्त्री की आज्ञा कड़ी रही,
वह आई दरबार पुन: मन्त्री से उसने बात कही—

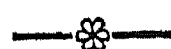
"गहनों के बदले रुपए दिलवाए हुए आप-द्वारा,
छीन रहा था वह यात्री, पर सब प्रयत्न करके हारा।
यही सूचना देने को श्रीमान् लौटकर मैं आई।"
बात गुप्तचर ने भी आ जैसी की तैसी बतलाई।

डपट बीरबल ने पूछा—"आज्ञा मेरी ही थी उसको,
इतना दुर्बल है तुमने ही डाकू बतलाया जिसको।
जिसमें नहीं शक्ति इतनी, वह गहने कैसे छीन सका?"
अब नारी के होश उड़े, हो गई सभा में हक्का-बक्का।

उसने तब अपराध किया स्वीकार, लगी सिसकी भरने।
देकर के धिक्कार क्षमा कर दिया उसे मन्त्रीवर ने।
बड़ी प्रशंसा की अकबर ने, न्याय अनोखा था कैसा?
न्याय दूध का दूध और पानी का पानी हो ऐसा!

+++ +++ +++ +++

दोस्त गधा भी हो सकता है !



रहता था बगदाद नगर में
अली नाम का नामी नाई,
क्षौर-क्रिया का कलाकार था
रखता अच्छी हाथ सफाई।

अपनी कार्य-कुशलता से ही
पैसा उसने खूब कमाया,
बड़े-बड़ों में पहुँच हो गई,
दिल में बड़ा घमण्ड समाया।

उसका कुटिल स्वभाव हो गया,
घृणा निर्धनों से करता था,
उन्हें सताने में उसको सुख
मिलता कभी नहीं डरता था।

गधा-पीठ पर लादे लक
एक लकड़हारा जो आय
मोल-तोल करके नाई
सब लकड़ी का दाम पटाय

उस अनजान लकड़हारे को
पता न था उसके स्वभाव का,
माँगा दाम गिराकर लकड़ी,
उत्तर पाया बड़े ताव का।

"दोस्त करो मत इतनी जल्दी ;
सौदा पूरा नहीं दिया है,
काठी क्यों निकाल ली ? मैंने
सब लकड़ी का दाम किया है।

आखिर वह भी तो लकड़ी है,
आया नहीं ध्यान में तेरे ?
बड़े चतुर मालूम पड़ते हो
उसको करो हवाले मेरे।"

सुनकर उसकी बात अचम्भा
भारी हुआ लकड़हारे को–
ऐसा सनकी ग्राहक अब तक
मिला नहीं था बेचारे को।

बोला—'मुझ गरीब से ऐसा
क्यों मजाक करते हो भाई ?"
उसने कहा—"मजाक कर रहा ?
मुझको समझ लिया बस नाई ?"

दाम फेंककर उसके आगे
फिर तो ले ली उसकी काठी,
उसने जरा विरोध किया, तो
उसने तुरत उठा ली लाठी।

झुका गधे पर लगा सोचने
दूर लकड़हारा तब जाकर,
गया खलीफा की ड्योढ़ी पर
मन में थोड़ा साहस लाकर।

× × ×

प्रातःकाल खलीफा ने जब
राजभवन में द्वारपाल से
पूछा—"आज सबेरे कोई
आया था क्या मिलने मुझसे ?"

"नहीं खास कोई आया था
एक गरीब लकड़हारा बस!"
सुनते ही तब उससे पूछा—
"तुमने उसे कर दिया वापस ?"

"नहीं द्वार पर ही बैठा है।"
सुना खलीफा ने, वे बोले—
"उसे इसलिए रोक दिया क्या,
वह असहाय यहाँ भी रोले ?"

कोई ऐसा तुच्छ नहीं है,
जो न आ सके राजभवन में !
जल्दी उसे बुला लाओ, वह
सोच रहा होगा क्या मन में ?"

आकर पास लकड़हारे ने
हजरत को फरियाद सुनाई—
"आज हुजूर, अली नाई ने
की है मेरे साथ बुराई।

सुबह खरीदी लकड़ी उसने,
उसी साथ काठी ले ली है,
कहता है—उस लदे बोझ की
सब लकड़ी की कीमत दी है।

बोझ बाँधने की काठी को
उसी बोझ में मनमानी से,
शामिल करके मोल किया था
ले ली उसे बेईमानी से।"

वहाँ उपस्थित दरबारी सब
बोल उठे—"भारी अनीति है।"
कहा खलीफा ने उससे—
"कानून की होती अजब रीति है।

उसी ओर कानून झुका है
और दोष भी उसी ओर है,
इधर तुम्हारी ओर न्याय की
सहानुभूति का पड़ा जोर है।

मैं कानूनी तौर से न कुछ
मदद तुम्हारी कर सकता हूँ,
किन्तु अली को भी कानूनी
पंजे में मैं धर सकता हूँ।"

कहा खलीफा ने धीरे से
एक उपाय कान में उसके,
सुनके मुसकाया, उपाय वह
रही सटीक जान में उसके।

× × ×

बैठा अपने द्वार अली ने
आता देख लकड़हारे को
सोचा—'क्या काठी लेने की
हिम्मत आई बेचारे को ?

उस दिन मजेदार सौदा क्या
मैंने इसके साथ किया था !
काठी भी लकड़ी में लेकर
अच्छा उल्लू बना दिया था।

जाकर पास लकड़हारे ने
उसको प्रेम-बन्दिगी दी जो,
तिरस्कार में कहा अली ने–
"सौदा करके हाथ न मीजो।

काठी पर झंझट पैदाकर
मेरा समय नष्ट मत करना।"
बोला तुरत लकड़हारा भी–
"मन में उसकी बात न धरना।

मैंने सोचा आज कि देखूँ,
जरा तुम्हारी हाथ सफाई,
मेरा औ' मेरे साथी का
बाल काट देते तुम भाई!"

सुनकर कहा अली ने हँसकर
"अच्छा शौक तुम्हें चर्राया
यहाँ खरचना बहुत पड़ेग
तभी हो सकेगा मन-भाया।

कहा लकड़हारे ने—"भाई,
"हर्ज नहीं, मैं खर्च करूँगा।
शौक मुझे ले ही आया, तो
खर्च के लिए नहीं डरूँगा।"

फिर तो उसका बाल अली ने
काटा और काटकर बोला—
"कहाँ तुम्हारा दोस्त? बुलाओ,"
गधा लकड़हारे ने खोला।

कहा—"यही मेरा साथी है।"
सुनकर चढ़ा अली का पारा—
"इतना साहस तुम्हें हो गया,
करते हो अपमान हमारा?

अपना हाथ तुम्हारे सिर पर
रखा, नहीं क्या यही बहुत है?
शेखी मुझे दिखाने आये,
गधे कहीं के, गधा दोस्त है?"

वह बोला–"फिर चिढ़ते हो क्यों
अगर गधे का गधा मित्र हो ?
गधा-गधा में भेद कर रहे,
बात छोड़ते हो, विचित्र हो !

बाल एक का...." "बहुत हो चुका !
जीभ खींच लूँगा जो बोला !"
"काठी लकड़ी..." "दुष्ट चुप रहो,
तुमने फिर अपना मुँह खोला ?"

कहकर देकर धक्का उसको
तुरत अली ने दूर हटाया।
अपमानित हो राज-भवन को,
लौट लकड़हारा तब आया।

कहीं खलीफा से सब बातें
उसे उन्होंने पकड़ मँगाया
पूछा–"देकर बात इसे क्यों
तुमने उसको नहीं निभाया ?

बोला अली—"हुजूर, दास यह
कहने को ही बचन-बँधा था।
क्षमा कीजिए, पूछ रहा मैं,
साथी किसका हुआ गधा है?"

उसे खलीफा ने तब डाँटा—
"पाजी, अब तू क्या बकता है?
काठी लकड़ी साथ बिकी तो
दोस्त गधा भी हो सकता है!

लकड़ी की काठी ने ही तो
पकड़ी है तेरी नकेल को;
बचन-बद्धता का सवाल है,
पूर्ण करो इस बचन-खेल को।"

पैरों पर गिर पड़ा अली तब,
दया लकड़हारे को आई।
विनय खलीफा से उसने की—
"दे दें इसे हुजूर, रिहाई!"

कहा खलीफा ने तब उससे—
"इसकी काठी लौटा देना,
सबसे सद्व्यवहार निभाना,
कभी किसी की खुशी न लेना।"

भले लकड़हारे को रुपए
दिए खलीफा ने इनाम में।
उनके न्याय, दया की चर्चा
गूँज उठी प्रति नगर-ग्राम में।

******

मियाँ की जूती मियाँ के सिर



रामशरण था एक महाजन दिल्ली में रहता था,
छोटे-बड़े सभी लोगों से भाव भला रखता था।
था विचित्र संयोग, हुण्डियाँ कई साथ ही आईं,
आठ लाख चुकता करने का झंझट सिर पर लाईं।

पाँच लाख धन-राशि पास थी, रहा जुटाना बाकी;
इनसे-उनसे कर्ज मँगाना—बात न थी शोभा की।
दिल्ली में था हरमोहन ही ऐसा एक महाजन,
जो आसानी से रुपए का कर सकता था साधन।

किंतु उसे हरमोहन के प्रति घृणा भाव था भारी,
फिर भी जाना पड़ा उसे, आ खड़ी हुई लाचारी।
रामशरण के यश-वैभव से ईर्ष्या वह करता था,
उसके आगे फीका लगना उसे बहुत खलता था।

हरमोहन यह चाह रहा था—रामशरण मर जावे
जिससे वह दिल्ली का सबसे नामी सेठ कहावे।
रामशरण का वहाँ पहुँचना उसे लगा अनहोना,
मौक़ा कुछ यदि मिले आज, चाहेगा उसे न खोना।

उसने स्वागत किया खूब, पूरा सद्भाव दिखाया।
रामशरण ने जब उससे अपना उद्देश्य सुनाया;
बोला—"आप नगर दिल्ली के हैं प्रख्यात महाजन,
पहले पहल द्वार पर मेरे लेने को आए धन;
अतः दिए धन का मैं अपने सूद नहीं ले सकता,
शर्त यही हफ्ते के भीतर हो जावे सब चुकता।
एक सेर फिर मांस नहीं तो तन का काट सकूँ
यदि होवे स्वीकार आपको, रुपए लाकर दूँ मैं

•

इतना अशुभ कथन करके हरमोहन जो मुसकाया,
मानो मनोविनोद करता है—ऐसा भाव दिखाया।
रामशरण को बुरा तो लगा, किन्तु विनोद बनाकर
हँसकर ही स्वीकार कर लिया, मन का भाव छिपाकर।
फिर तो उससे तुरत शर्त पर हस्ताक्षर करवाकर
तीन लाख रख दिए हाथ पर हरमोहन ने लाकर
दैव-योग-वश रामशरण जो गया काम से बा
निश्चित समय बीतने पर ही लौट सका अपने घ

रुपए सूद समेत जुटाकर रामशरण घबड़ाकर
और बहुत लज्जित सा होकर पहुँचा उसके घर पर
हरमोहन से बोला—"मुझको देर हो गई भाई,
इसका बड़ा खेद है मुझको, क्या दूँ और सफाई !
सूद अधिक से अधिक लगाकर आया ऋण लौटाने।"
हरमोहन ने कहा—"आप अब करें न और बहाने।
जो कुछ है ठहराव हो चुका, वही निभाना होगा ;
धन का ही क्या धनी, बात का धनी कहाना होगा।

मुझ पर भी तो तीन लाख की चपत पड़ रही भारी,
महाजनों को सदा रही है कही बात ही प्यारी।"
रामशरण ने उसके मन की बात समझ ली रुख से,
बेचारा पड़ गया फेर में बात न निकली मुख से।
लज्जित होकर बिना कहे कुछ लौट भवन वह आया,
हरमोहन दरबार गया, जब हुआ नहीं मन-भाया।
बादशाह अकबर से उसने सारा हाल सुनाया
किन्तु शाह को उल्टे उस पर बड़ा क्रोध हो आया।

बोले–"ऐसी शर्त लगाई क्यों तुमने हत्यारे ?
हुआ नहीं संकोच, चला भी आया पास हमारे !"
कहा बीरबल से–"हजरत की शर्त कराओ पूरी,
देखो, न्याय माँगने आई पास तुम्हारे छूरी !"
कहा बीरबल ने–"हुजूर, इकबाल आपका भारी ;
छूरी को भी न्याय दिला सकता है आज्ञाकारी।"
हरमोहन से बोले तब–"तुम मांस काट सकते हो,
उसके साथ खून गिरने की पर न शर्त रखते हो।

एक बूँद भी खून गिरा, तो मृत्यु दण्ड पाओगे,
हत्या करने के प्रयत्न में स्वयं लटक जाओगे।"
बोले खुश हो शाह–"बीरबल, तुम विभूति हो मेरी,
तुमने न्याय के लिए अच्छी गुंजाइश यह हेरी।"
सुनकर हरमोहन की नाड़ी मन्द पड़ी, तन सूखा,
कहाँ अभी था एक महाजन के जीवन का भूखा।
बड़ी नम्रता से बोला–"मैं मांस नहीं अब लूँगा,
रामशरण जो चाह रहे थे, मैं भी वही करूँगा।"

कहा बीरबल ने—"हो सकता कभी नहीं अब ऐसा,
अपनी शर्त करो पूरी, तुम चाह रहे थे जैसा।
तुम्हें मांस ही लेना होगा, जल्द करो तैयारी
आज्ञा-पालन नहीं किया, तो दण्ड मिलेगा भारी।"
लगा गिड़गिड़ाने हरमोहन—"क्षमा कीजिए मुझको।"
कहा बीरबल ने—"न छोड़ अब सकता हूँ मैं तुमको।"
तीन लाख रुपए भी डूबे, हुआ जेल ऊपर से;
हुए बीरबल खूब प्रशंसित बादशाह अकबर से।

+++++++

जो पसन्द होगा



एक बड़ा कंजूस किसी नगरी में रहता,
पैसा रहते पास भूख भी जो था सहता।
जीवन के सुख से वंचित करके अपने को,
कौड़ी-कौड़ी जोड़ रत्न रख लिए अनेकों।

रंग-रूप में लगता था कंजूस कुली सा,
था दरिद्रता का निवास घर मामूली सा।
दैव-योग से आग लग गई उसके घर में,
फिर तो लगी फैलने वह उसले घर भर में।

रत्नों का संन्दूक रह गया घर के भीतर,
पेट काटकर जिन्हें जुटाया था जीवन भर।
जोर-जोर चिल्लाकर बेचारा रोता था,
लोग जुटे, पर किए न उनके कुछ होता था।

स्वर्णकार था एक, पास में ही बसता था,
अपनी चालाकी से वह सबको फँसता था।
बोला उसको डाँट—"जान क्यों देते इतना,
छप्पड़ की झोपड़ी, मूल्य ही इसका कितना?"

रोकर वह बोला—"भैया, तुम क्या जानोगे ?
कहूँ उसे, तो कभी नहीं तुम सच मानोगे !
रत्न जुटाए कई जोड़कर कौड़ी-कौड़ी।"
सुनकर स्वर्णकार के मन में लालच दौड़ी।

वह बोला—"यदि मैं निकाल बाहर लाऊँगा,
मुझको जो होगा पसन्द, तुमको दे दूँगा।"
उसने मन में कहा—यहाँ सब कुछ जाता है,
वही बहुत यदि उसका आधा भी आता है।

झट करके स्वीकार बताई जगह खुशी से,
स्वर्णकार ने बात जनाकर वहाँ सभी से।
लालच के बश जान हथेली पर लेकरके,
साहस कर घुस गया आग में भीतर घर के।

बेचारा कंजूस शोक में बहुत विकल था,
युग के जैसा बीत रहा उसका पल-पल था।
स्वर्णकार सन्दूक लिए जब बाहर आया,
मिली उसे तब शांति और जी में जी पाया।

पर उसने तो रत्न सभी अपने पल्लेकर ,
बोला बस सन्दूक उसे खाली ही देकर--
"बुरा नहीं मानना, हुआ यह समझौता था ;
इतना सुनते ही तो ठनका उसका माथा ।

ढंग देखकर दुःखी हुआ कंजूस बड़ा ही ,
घबराया, हो गई बात कैसी अनचाही ।
पैरों पर गिर पड़ा, उसे पर दया न आई ,
बोला उल्टे और बात में लिए रुखाई—

"लेना-देना सब निर्भर हो चुका खुशी पर ,
बचन-बद्ध तुम हुए, अड़े अब रहो उसी पर ।"
वह बोला अति नम्र भाव से—"सुन लो भाई ,
है तेरा उपकार बड़ा, ले लो चौथाई ।"

स्वर्णकार ने कहा—"एक भी नहीं सुनूँ
चाहे जो हो जाय, रत्न मैं एक न दूँगा।
सब कुछ करके थका, किन्तु कंजूस बेचा
सफल नहीं हो सका, भूमि पर सिर दे मा

वहाँ उपस्थित भले जनों का कुछ कह सकना,
समझौते के आगे तो था केवल बकना।
उसकी कंजूसी से लोग घृणा करते थे।
अतः अधिक जन स्वर्णकार का स्वर भरते थे।

नहीं जवाहर मिले, निराशा मन में छाई,
न्यायालय में गया, वहाँ फरियाद सुनाई।
रहा दयालु विवेकी न्यायलय का काजी,
आज्ञा-द्वारा गया बुलाया तब वह पाजी।

काजी उन दोनों की बातें सुनता जाता,
अति गम्भीर विचार-मग्न सा हुआ दिखाता।
मन में सोच विचार कहा उस स्वर्णकार से—
"झगड़ा तो कुछ नहीं यहाँ मेरे विचार से।

बात खतम है, नहीं किसी की दाल गलेगी;
यहाँ तुम्हारी ही पसन्द पर बात चलेगी।
तुम मुझको बतलाओ, क्या तुमको पसन्द है?"
उसने सोचा—भाग्य बहुत मेरी बुलन्द है।

बोला वह––"मुझको पसन्द है रत्न-जवाहर।"
"इसे वस्तु अपनी पसन्द की दो फिर लाकर।
यही रहा ठहराव—करोगे जो पसन्द तुम,
उसको दोगे।" स्वर्णकार सुन इसे हुआ गुम।

ऐसा हुआ सटीक न्याय यह न्यायासन से––
'धन्य-धन्य' का शब्द हुआ बैठे जन-जन से।
स्वर्णकार की शोखी सारी बन्द हो गई।
उसके दिल की धड़कन भी कुछ मन्द हो गई।

कोस रहा था लालच की निज मतिमन्दी को,
देने ही पड़ गए जवाहर प्रतिद्वन्द्वी को।
अपनी लालच पर मन में पूरा पछताया,
चौथाई की लालच में सम्पूर्ण गँवाया।

ले खाली सन्दूक बनाए मुँह अपना स
चला भवन, सब कुछ उसको लगता सपना स
काजी को मन से देकर अशीष, बड़ा
हो प्रसन्न कंजूस जीतकर चला लड़ाई

+++ +++ +++ +++

न्याय-व्यवस्था में न दण्ड ही
केवल आवश्यक होता;
न्यायी कभी क्षमा भी करके
दोषी के मन को धोता।

दण्ड ही नहीं, क्षमा भी

अकबर के दीवान बीरबल
न्याय निराला करते थे,
मन का उचित न्याय करने में
नहीं शाह से डरते थे।

तीन जनों को राज्य-सभा में
पकड़ सिपाही ले आया,
दोष किया था जो तीनों ने
उसे शाह से बतलाया।

एक सेठ के यहाँ उन्होंने
मिलकर के चोरी की थी
और पकड़ जब लिए गए वे,
तो सीनाजोरी की थी

बादशाह ने उचित दण्ड का
छोड़ा भार बीरबल पर
शीश झुकाया बादशाह को
मन्त्री ने आज्ञा पाकर

उन तीनों पर बड़े ध्यान से
दृष्टि बीरबल ने डाली,
देख भाव उनके मुखड़े का
मन की ठीक थाह पा ली।

ग्लानि एक के मुखड़े पर थी,
और सभीत दूसरा था,
किन्तु न उसके लिए हुआ कुछ,
ऐसा घाघ तीसरा था!

समझ बीरबल गए कि इनकी
चोरी में है मात्रा-भेद—
लगता है कि एक की पहिली
गलती है, उसको है खेद।

और दूसरे ने इस पथ पर
चलना है आरम्भ किया;
किन्तु तीसरे ने चोरी को
अपना पेशा बना लिया।

छानबीन के लिए शाह से
मन्त्री ने आज्ञा लेकर,
दो दिन पीछे पेशी डाली
उन्हें जेलखाना देकर।

फिर तो छानबीन करने से
उनको ज्ञात हुआ ऐसा—
नहीं बहुत दोषी था पहला,
उनका था विचार जैसा।

अच्छे खानदान का था वह
चाल चलन भी अच्छा था,
उसी घाघ के चक्कर में पड़
बिगड़ा था उसका माथा

उसके ही कुसंग में पड़कर
यह पहिली गलती की थी
निर्धन था दूसरा, इसलिए
चोरी ही अपना ली थी।

किन्तु तीसरा बड़ा जुआड़ी,
नशेबाज, व्यभिचारी था,
चोरी का यह काम इसी से
बहुत दिनों से जारी था।

इसने ही उस निर्धन को भी
अपने साथ मिलाया था,
अतः बीरबल के विचार में
जैसा निर्णय आया था—

पेशी पर पहले से बोले—
"अब न कभी ऐसा करना !
कटु अनुभव हो चुका तुम्हें कुछ,
सदा बुराई से डरना।"

और दूसरे को दो कोड़े
लगवाकर उससे बोले—
"जो निर्धन हो, उसे उचित क्या
औरों के ताले खोले !

जाओ, अगर नहीं सुधरे, तो
आगे दण्ड कड़ा दूँगा।
बुरे काम में पकड़ गए जो,
हाथ-पैर कटवा लूँगा।"

कहा तीसरे से आखिर में—
"तुम हो अपराधी भारी।
केवल चोर नहीं हो, तुमने
पकड़ीं बुराइयाँ सारी।

जुआ, नशा, व्यभिचार के लिए
चोरी करते - करवाते
अच्छे को भी बुरा बनाते,
जरा नहीं तुम भय खाते

अपना काला मुँह लेकर तुम
नगर घुमाए जावोगे
और साल भर घोर कष्ट की
जेल - यातना पाओगे

निर्णय देकर किया हवाले
तुरत सिपाही के उसको ।
बोले शाह कान में उनसे--
"भाया न्याय न यह मुझको !

नहीं कभी कानून आजके
निर्णय से राजी होगा ।
पहले ने अपनी गलती का
कुछ भी दण्ड नहीं भोगा ।

और दूसरे को भी कोई
खास दण्ड तो मिला नहीं ।
आज तुम्हारे इस निर्णय से
मेरा मन तो खिला नहीं ।"

कहा बीरबल ने--"हुजूर का
कहना मेरे सिर पर है ;
सेवक का यह निर्णय फिर भी
नहीं न्याय के बाहर है ।

ा दोष दण्ड भी वैसा—
बहुत सही यह नीति नहीं ;
ेक दण्ड-परिणाम देखना
होता उससे ठीक कहीं।"

तर सुनकर बादशाह ने
आगे फिर कुछ कहा नहीं।
न्तु बीरबल की बातों पर
उनका मन टिक रहा नहीं।

एक महीने बाद उन्होंने
चुपके पता लगाया था—
मंत्री के उस किये न्याय का
फल विचित्र ही पाया था।

जिसने कुछ भी दण्ड न पाया,
उसको बड़ी ग्लानि आई ;
वह सच्चा हरि-भक्त बन गया;
क्षमा बनी अति फलदाई!

और दूसरा लगा कमाने
रोजी मजदूरी करके,
मेहनत-मजदूरी में लिपटे
सभी लोग उसके घर के।

किन्तु तीसरा पहिले भी था
जेल-सजाएँ काट चुका।
दोष, दण्ड करने, सहने में
क्षमता अपनी बाँट चुका।

ऐसा न्याय-विवेक देखकर
हुए प्रसन्न बीरबल पर,
भरी सभा में बड़ी प्रशंसा
करने लगे शाह अकबर।

न्याय-व्यवस्था में न दण्ड ही
केवल आवश्यक होता;
न्यायी कभी क्षमा भी करके
दोषी के मन को धोता।

—※—

न्यायी की वाणी पर करता
है परमेश्वर शासन,
रहे खूब निष्पक्ष इसलिए
सदा न्याय का आसन।

पंच परमेश्वर

अलगू और शेख जुम्मन दो बड़े मित्र रहते थे,
"दो शरीर में प्राण एक ही बसा"—लोग कहते थे।
अलगू को बस एक काम जुम्मन का बहुत खटकता,
कभी-कभी तो स्नेह-भाव भी उसका वहाँ ठिठकता।
जुम्मन के द्वारा उसकी मौसी जो दुःख पाती थी,
जहाँ-तहाँ इनसे-उनसे अपना रोना गाती थी।
इस मौसी के रहा न कोई अपना बेटी-बेटा,
जुम्मन ने उसको अपनी माया में खूब लपेटा—

भोजन-कपड़ा और बचन से मौसी को पिघलाया,
उसकी सारी जायदाद को अपने नाम लिखाया।
बयनामा लिखवाकर जुम्मन शेख हुआ जब खाली,
मौसी को अब उसकी बीबी लगी सुनाने गाली।
हलुआ-पूड़ी गई, थाल में आई सूखी रोटी,
निकली वह मौसी बेचारी बड़ी भाग्य की खोटी।
बन्द हुई उसको मिलना भर पेट रोटियाँ सूखी,
रह जाती थी अब तो वह बुढ़िया बेचारी भूखी।

कड़ी बात कह देता जुम्मन उसको झुझलाहट में—
"भूल हुई जो पड़ा तुम्हारे इस भारी झंझट में।
पता नहीं, इतनी लम्बी यह आयु कहाँ पाई हो,
मौत नहीं आ सकती, उससे लड़कर तुम आई हो।"
माँगा जो मौसी ने उससे अपना अलग गुजारा,
सुनकर उसकी बात शेख का गरम हो गया पारा—
"बात कर रही हो कानूनी, मौसी तुम अपनी हो?
दो पैसे की जायदाद देकरके शेख बनी हो!

जाओ, पंचायत करके तुम कर डालो निपटारा,
मैं भी चाह रहा हूँ तुमसे मिटे बखेड़ा सारा।
बड़ी निराश और उत्तेजित भी वह बुढ़िया होकर,
बहुतों से अपनी दुख-गाथा कह डाली तब रोकर।
अलगू को भी दुःख में उसने खोटी-खरी सुनाई;
उसकी बातों को सुन उसको ग्लानि बड़ी हो आई।
अलगू के जीवन की थी आदर्श-भावना ऊँची,
ढाल रहा था वह अपने जीवन में जिसे समूची।

मित्र न केवल सुख का ही, दुःख का भी साथी होता,
यहाँ तक कि वह मित्र-दोष को भी अपने सिर ढोता।
बुढ़िया थी लाचार, बात उसके मन में जो आई,
जुम्मन के विरुद्ध उसने पंचायत एक बुलाई।
अलगू का भी हुआ बुलावा, आना उसे पड़ा ही,
उस दिन उसे धर्म-संकट का अनुभव हुआ बड़ा ही।
भले नेक पंचों के चुनने की आई जब बारी,
अलगू के सिर पर संकट पड़ गया और भी भारी।

पता नहीं, वह बुढ़िया किसके द्वारा गई सिखाई;
अथवा उसके मन में अपने ही यह बात समाई।
जुम्मन से जब कहा गया कि पंच चुनो तुम अपना,
देख रहा था वह मानो अपने प्रभाव का सपना—
बोला—"मौसी जिसे मान दे, वही पंच है मेरा,"
मौसी ने अलगू को माना, उसे सभी ने घेरा।
इस चुनाव से जुम्मन के मन में प्रसन्नता आई।
बिना किए कुछ, बात हो गई कैसी बनी-बनाई!

बैठ 'पंच परमेश्वर' के आसन पर अलगू बोला—
"सुनो भाइयो, इस धरती पर है दो दिन का चोला।
मरने पर केवल अपना ईमान साथ जावेगा।
करनी का सब यश-अपयश यह जग पीछे गावेगा।
न्याय स्वयं भगवान्-रूप है, अपना और पराया—
भेद-भाव यह यहाँ नही जा सकता है ठहराया।
जुम्मन का मौसी के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं है,
ऐसा अंधा बनकर साधा जाता स्वार्थ कहीं है?

इन्हें अलग से उसका पूरा खर्च बाँधना होगा
अब आगे से उसके प्रति कर्त्तव्य साधना होगा
नहीं करेंगे ऐसा तो बयनामा रद्द रहेगा
बुढ़िया का ले पक्ष बात यह सारा गाँव कहेगा।
जन-समूह ने वहाँ 'पंच परमेश्वर' की जय बोली
जुम्मन के दिल पर तो मानो दाग दी गई गोली
उसने अपने प्रति इसको विश्वासघात ही माना
अलगू से बदला लेने का जुम्मन ने प्रण ठाना

× × ×

जुटा योग, अलगू ने बेचा बैल एक तेली को
कुछ दिन के उधार पर, खटका रहा न उसके जी को।
उस समझू तेली ने गाड़ी में जो उसे रपेटा;
कम खुराक पर अधिक काम का ऐसा दिया चपेटा—
अच्छा ताजा बैल सूखकर काँट बन गया पूरा,
करने लगा काम वह समझू का अब सभी अधूरा।
समझू कहने लगा गाँव में, बैल गदाई पाया;
अलगू को भी एक दिवस उसने यह कथन सुनाया।

देख बैल को अलगू को वैसे ही दुःख होता था,
बहुत अधिक पछताता था वह, भीतर मन रोता था।
कहा-सुनी हो गई, बात का आँट पड़ गया भारी,
उससे बैल पुनः ले लेने में जो थी लाचारी;
अलगू ने उससे माँगे जब रुपए, टाल गया वह,
लेन-देन में खड़ा कर दिया झंझट एक नया वह।
इसी बीच जब बैल एक दिन गाड़ी खींच रहा था,
गिरा, उसे समझू ने देखा—आँखें मींच रहा था।

बैल मर गया और माल भी लूट लिया चोरों ने,
अब तो और दाम को लेकर लगी लड़ाई होने।
झगड़े के फैसले के लिए जुटी एक पंचायत,
तेली स्वार्थ साध लेने के लिए बन गया आरत।
उसने झटपट जुम्मन को ही अपना पंच बनाया,
अलगू बेचारे के दिल में सदमा बड़ा समाया।
उसने भी स्वीकार कर लिया, जुम्मन का दिल दहला,
इस आसन की महिमा का उसका अनुभव था पहला।

समझ गया वह, यहाँ पंच परमेश्वर बन जाता है,
उसकी वाणी में ईश्वर ही निर्णय सुनवाता है।
निर्णय हुआ कि अलगू पूरा दाम बैल का लेंगे,
समझू दो दिन के भीतर ही सारा रुपया देंगे।
हुई 'पंच परमेश्वर की जय', जुम्मन आँसू बहाता,
जा लिपटा अलगू से, फिर से जुड़ा प्रेम का नाता।
बड़ा पवित्र सदा से ही है रहा न्याय का आसन;
न्यायी की वाणी पर करता है परमेश्वर शासन।

हमारी कामना

—*—

मनुज-वंश में पैदा होवें हंस समान विवेकी,
करके भेद दूध-पानी का बनें सत्य के टेकी।

सबको न्याय सुलभ-सस्ता हो, निर्भयता आ जावे,
न्याय 'पंच परमेश्वर' वाला कथन सटीक बनावे।

अन्तर बाघ और बकरी का बना हुआ है जब तक,
एक घाट का पानी सबको न्याय पिलावे तब तक।

न्यायाधीश अचूक बुद्धि के हों सैंकोपैंजा सा,
जिनके आगे सफल न होवे कभी झूठ का पाशा।

सहानुभूति सद्भाव खलीफा ने जैसा दिखलाया,
उनके पास लकड़हारे ने न्याय न केवल पाया।

मिला पारितोषिक, उससे भी बढ़कर भाईचारा;
ऐसा संरक्षक-संपोषक होवे न्याय हमारा।

तथा बीरबल दौड़-धूप कर चिन्ता, तत्परता से,
जैसी छानबीन न्याय में करते थे क्षमता से।
अपनी सुख-सुविधा की सीमा के बाहर कुछ आकर,
न्यायाधीश आज भी वैसा बरतें कष्ट उठाकर।

अनाचार के लिए जहाँ हो न्याय आग सा दाहक,
वहीं मातृ सा हो अबोध के लिए क्षमा का वाहक।
मंगलमय भगवान्, हमारी धरती मंगलमय हो,
अनाचार को मिले न अवसर, सदाचार की जय हो।

